शास्त्रीय संगीत का सूफी स्वर

एक विख्यात संगीत-समीक्षक ने काफी पहले लिखा था कि बीसवीं सदी ने हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत को चार अनूठे कलाकार दिए- उस्ताद अमीर खां साहब, उस्ताद बड़े गुलाम अली खां, कुमार गंधर्व और पंडित अमरनाथ। सोचने की बात यह है कि इनमें से दो कलाकार एक ही यानी इंदौर घराने के थे। उस्ताद अमीर खां गुरु थे और अमरनाथ उनके शिष्य।

पं. अमरनाथ की शागिर्दी की कहानी एक दिलचस्प दास्तान है। पहले उन्होंने प्रोफेसर बी एन दत्ता से लाहौर में संगीत के गुर सीखे। १९४८ में वे विधिवत उस्ताद अमीर खां के शिष्य बने। इस दौर का अपना अनुभव उन्होंने इस तरह बयान किया है- 'मैंने जब पहली बार खां साहब को सुना तो ऐसा लगा की मॉर्फीन का इंजेक्शन ले लिया है। मुझे कई हफ्तों तक उसका खुमार चढ़ा रहा।' फिर एक दिन ऐसा भी आया जब उन्होंने स्वयं अपने उस्ताद से कहा-'मैं तो कई जन्मों से आप का शागिर्द बनता चला आ रहा हूं।' आजीवन गुरु और शिष्य का यह मनालाप बना रहा और इस बारे में उनके छोटे गुरुभाई गजेन्द्र बक्षी जी कहते हैं कि-'यदि संगीत जगत में उस्ताद अमीर खां का स्थान निजामुद्दीन औलिया का है तो पं अमरनाथ उनके अमीर खुसरो थे।'

जाहिर है गायन की अपनी विशिष्ट शैली के कारण अमरनाथजी ने शास्त्रीय संगीत की राह को और रोशन किया आकाशवाणी से लेकर खास फिल्मों और विख्यात नाटकों में उन्होंने जो संगीत दिया वह लासानी है। उन्होंने भारत में ही नहीं विदेशों में भी शास्त्रीय संगीत की परंपरा को समृद्ध किया। सभी प्रमुख देशों में उन्होंने कार्यक्रम दिए और इंदौर घराने का नाम ऊंचा किया। यह भी संयोग है कि उस्ताद अमीर खां अपने संगीत पूर्वजों को अमीर खुसरों के कव्वाल बच्चे घराने से जोड़ते और पं. अमरनाथ अपना नाता पंजाब के सूफी संत बाबा फरीद की परंपरा से बताते। वे कहते थे -'मेरी पैदाइश झंग की है, जहां माई हीर का मकबरा अब भी मौजूद है। हमारा घर उस के बहुत पास होता था।' बल्कि झंग एक जमाने में सूफी फकीरों का गढ़ माना जाता था।

शायद यही वजह है कि खां साहब ने फारसी के तराने, रूहानी गीत गाए तो पंडित जी ने काफियां गाईं, जिन्हें पंजाबी के रुहानी गीत भी कहा जा सकता है। यह इन दो कलाकारों की सबसे बड़ी और बेजोड़ देन है जिसने हिंदुस्तानी खयाल शैली को नया रूप दिया।

पंडित जी ने इसे यों समझाया-'उस्ताद अमीर खां साहब ने संगीत में पॉज यानी न्यास या ठहराव का आविष्कार किया।' यह पॉज, इंदौर की गायकी में अनहद नाद का प्रतीक बना, जिससे आहद (सुने गए) नाद का जन्म होता है, और अमीर खां साहब के संगीत ने अनहद वाक्य को आहद वाक्य से बुनते हुए और आहद को अनहद से बुनते- बुनते अपने संगीत में सुनने वालों को, सुरों से ही सुरों के अनंत के दर्शन कराए।

शागिर्द होने के बावजूद पं. अमरनाथजी ने अपने उस्ताद की गायकी अपने ही सोच और सच्चाई से अपनाई। उनकी गायन शैली का सबसे महत्वपूर्ण पहलू बना एक अनोखा मंद्र आलाप। इसे मंद्र में राग की बढ़त भी कहा जा सकता है।

यहां इंदौर घराने के आलाप का एक सूत्र बताना जरूरी है- सुरों की बढ़त करते समय बार बार 'सा' पर लौटना, जिस भी सुर पर बढ़त हो,

पंडित अमरनाथ

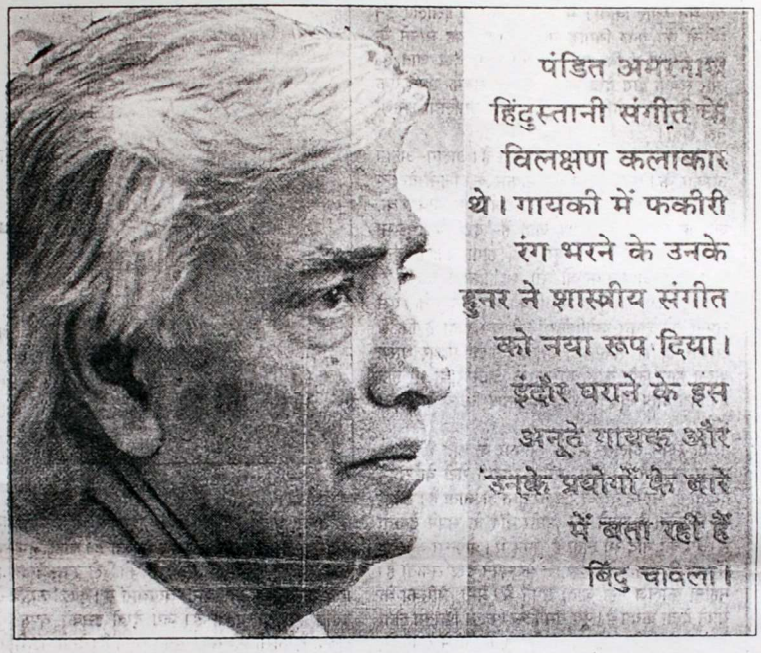

ऐसा तत्व है जिससे इंदौर की गायकी कभी भी और किसी गायकी से मिलती जुलती नहीं सुनाई पड़ेगी।

पंडित जी के संगीत को समझने के लिये दूसरी अहम बात है -मेरुखंड जो कि इंदौर की गायकी का ताना और बाना है। मेरु, यानी स्केल या रीढ़ की हड्डी और खंड यानी उसके भाग। पं. शारंगदेवजी की १२वीं सदी के शास्त्र, संगीत रत्नाकर में पहली बार मेरुखंड के रास्ते बताए गए हैं । और इंदौर घराने के गायक मेरुखंड को अपने आलाप का चलन बताते हुए प्रयोग में लाए। अमीर खां साहब ने मेरुखंड को एक इंकलाबी तरीके से इस्तेमाल किया, जोकि इस गायकी की साधना बन गई है। कुछ लोगों ने मेरुखंड को सुरों का एक शास्त्रज्ञ बर्ताव समझा। वास्तव में उस्ताद अमीर खां के रागों में इससे नए और आकर्षक रास्ते बने। अमरनाथजी केगाने में इससे राग की भीतरी तहें खुलीं और खिलीं। दोनों ने मेरुखंड से अपने रागों के तीसरे नेत्र के दर्शन कराए।

एक बार इंडिया इंटरनेशनल सेंटर में एक व्याख्यान में पंडित जी से किसी ने मेरुखंड समझाने के लिए कहा तो उन्होंने ने गरमा कर जवाब दिया- 'मैं अपनी चालीस बरस की मेरुखंड की तपस्या तुम्हें चार मिनट में समझा दूं। क्यों?' उनका मतलब था कि मेरु पर्वत को चढ़ने के लिए उसके खंडों की जानकारी के लिए उसे करना पड़ेगा। मेरुखंड करने का योग है, बोलने का नहीं। और इस योग-यात्रा में है साधना से सिद्धि, सिद्धि से समाधि।

एक बार इंडिया इंटरनेशनल सेंटर में एक व्याख्यान में पंडित जी से किसी ने मेरुखंड समझाने के लिए कहा तो उन्होंने ने गरमा कर जवाब दिया- 'मैं अपनी चालीस बरस की मेरुखंड की तपस्या तुम्हें चार मिनट में समझा दूं। क्यों?' उनका मतलब था कि मेरु पर्वत को चढ़ने के लिए उसके खंडों की जानकारी के लिए उसे करना पड़ेगा। मेरुखंड करने का योग है, बोलने का नहीं। और इस योग-यात्रा में है साधना से सिद्धि, सिद्धि से समाधि।

मेरुखंड की सबसे बड़ी बात जो पंडितजी ने समझाई, वह यह थी कि उस्ताद अमीर खां पहली बार मेरुखंड को रागों की अवरोही में खोला, हालांकि इसे शारंगदेवजी की पुस्तक में आरोही के रूप में दिया गया है। अमरनाथ जी ने इस बात को ऐसे समझाया- 'आरोही में अवरोही नहीं होती, लेकिन अवरोही में आरोही जरूर होती है- जाने में आना नहीं होता लेकिन आने में जाना जरूर शामिल होता है। इस तरह से उस्ताद अमीर खां साहब ने मेरुखंड के वैज्ञानिक रूप को एक फलसफे में बदल डाला। खां साहब के तीसरे नेत्र को मेरुखंड के मंडले के दर्शन हुए। दिलचस्प बात यह है कि इंदौर के गायकों ने जितनी विलंबित खयाल में निपुणता हासिल की, उतने ही वे द्रुत खयाल में दक्ष बने। कारण यह था कि उन्होंने द्रुत में विलंबित का ही एक गतिशील रूप देखा। अमरनाथ जी यहां तेजी और गतिशीलता में अंतर रखने के लिए कहते।

पंडित जी के विलंबित और द्रुत खयाल में एक प्राकृतिक- सा मेल बना रहता। और ऐसा कोई संगीतज्ञ नहीं है जिसने अपने हर गाए जाने वाले राग में विलंबित और द्रुत बंदिशों के जोड़े बनाए। गाते समय उन्हें इस की काफी चिंता रहती कि विलंबित और द्रुत बंदिशों में भाव का रिश्ता, आत्मरंग का रिश्ता कैसा है।

अपने उस्ताद की तरह वे भी किसी भी महफिल में आसानी से पहले राग के बाद दूसरे राग में विलंबित में डूब जाते, जो कि आज के माहौल में एक बहुत ही अनोखी बात है। साफ बात यह है कि इंदौर के इन दो गायकों का संगीत वाकई अमर है जो खयाल को सीधे नहीं बल्कि गोलरूप में खड़ा करते हैं।

पंडित अमरनाथ एक बार स्टेज पर बैठ जाते तो अपने ऊपर पड़ती लाइटों को हल्का करवाते ताकि रोशनी की यह मार उनकी समाधि को न तोड़े और अपने सुनने वालों पर पड़े अंधेरे को कम करने के लिए प्रेक्षागृह में हल्की-सी रोशनी देने को कहते ताकि सुनने वालों के साथ परायापन न रहे और वे उनके प्यार को निकटता से महसूस कर पाएं। वे गूंज यानी प्रतिध्वनि के बहुत खिलाफ थे और स्पीकर बंद करवा देते। और यही वजह थी कि उनकी हर महफिल एक समाधि बनी- प्रभु का आहवान, एक पूजा।

अमरनाथ जी को उनकी बंदिशों के लिए हमेशा याद किया जाएगा इन बंदिशों को उन्होंने एक सूफी की जुबान से रचा और खयाल बंदिश को एक नई गहराई प्रदान की जो कि सूफी साहित्य के लिए भी एक बहुत बड़ा योगदान है।

राग काफी कान्हड़ा में उन्होंने यह बंदिश रची—

अरे ओ रे जोगी, प्रीत न भोगी?
तरसत सकल दिनां, नहीं दाता के मन करुना उपजी?
अरे ओ रे जोगी....

ये बोल योगी के प्रति एक उदास-सा व्यंग्य है, जो की प्रीत से मुंह मोड़ लेता है और अपनी आध्यात्मिक यात्रा में मीत के बिना ही चल पड़ता है। योगी और सूफी में यही तो अंतर है, सूफी तो यार में ही भगवान के दर्शन कर लेता है।

राग कलिंगड़ा में उन्होंने ध्यान और ध्यान योग को एक सूत्र में बांधते हुए लिखा-अरे ओ रे सांवरे,
मैं तो चोरी करी तुम सों बिन पूछे- तोरा ध्यान चुराया सांवरे...

वे अपने सांवरे से किस हक से कह रही है- मैंने तो तुम्हारी सबसे कीमती चीज चुरा ली है, तुम्हारा ध्यान, और वह भी बिना तुमसे पूछे....

आजीवन पंडित जी ने खयाल बंदिश को मान्यता दिलाने के लिए अपना अभियान चलाए रखा और वे चाहते थे कि गायक और कवि, दोनों इस रूप की संजीदगी को पहचानें। उनका मत था कि गेय कविता अपना भारीपन त्याग कर एक और भी सूक्ष्म कला का रूप लेती है, जिससे वह और भी रहस्यमयी हो सकती है। उनके अभियान सिर्फ बंदिशों तक सीमित न थे। वे चाहते थे कि विश्वविद्यालयों में भी घराना परंपरा को महत्त्व मिले। अमरनाथ जी आज हमारे बीच नहीं हैं लेकिन शिष्यों के रूप में उनकी ऐसी परंपरा कायम है जो हिंदुस्तानी संगीत की राह को हमेशा रोशन करती रहेगी। ◆